International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 25-07-2026, Accepted: 24-08-2026, Published: 09-09-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 381-385

वंदे मातरम्: राष्ट्रीय एकता और वैचारिक विरोधाभास के बीच ऐतिहासिक विमर्श

किशोर कुमार[1], मिथिलेश पंडित[2]
[1] प्रोफेसर, प्राचार्य, मिहिर भोज स्नातकोत्तर महाविद्यालय,दादरी,ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] शोधार्थी, कु. मा. राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhssr.2026.12.3.12314

सारांश
यह शोध पत्र वन्दे मातरम् की ऐतिहासिक यात्रा और उससे जुड़े वैचारिक अर्थों का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की यह रचना आरंभ में साहित्यिक अभिव्यक्ति मात्र थी, किंतु 1905 के बंगाल विभाजन के बाद यह औपनिवेशिक सत्ता के विरोध में उभरती राष्ट्रवादी चेतना की सशक्त आवाज़ बन गई। सभाओं, जुलूसों और विद्यार्थियों के आंदोलनों में इसके प्रयोग ने इसे आम जनता की भावनाओं से जोड़ दिया। इसके साथ ही शोधपत्र यह भी स्पष्ट करता है कि गीत में निहित सांस्कृतिक रूपक और मातृभूमि के देवीस्वरूप चित्रण के कारण समाज के एक वर्ग के एक हिस्से में असहजता उत्पन्न हुई, जो आगे चलकर 1920 और 1930 के दशकों में राजनीतिक विमर्श का विषय बनी। शोध का केंद्रीय तर्क यह है कि वन्दे मातरम् को किसी एक निश्चित श्रेणी में सीमित नहीं किया जा सकता। यह न तो मात्र एक सांस्कृतिक रचना है और न ही मात्र राष्ट्रवादी प्रतीक। इसमें समय और परिस्थितियों के साथ इसके अर्थों में आए बदलाव इसे औपनिवेशिक भारत में राष्ट्र–निर्माण, सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक संबंधों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत बनाते हैं।

मुल शब्द: वंदे मातरम्, औपनिवेशिक भारत, राष्ट्रवादी चेतना, धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक पहचान, सांप्रदायिकता, स्वतंत्रता आंदोलन और राजनीति

वंदे मातरम् का मूल पाठ
वन्दे मातरम्!
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम,
शस्यश्यामलां मातरम्!
वन्दे मातरम्
शुभ्रज्योत्स्ना पुलकितयामिनीम्,
फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्,
सुखदां वरदां मातरम्!
वन्दे मातरम्!
कोटि–कोटि कंठ कलकल निनाद कराले,
कोटि–कोटि भुर्जैधृत खरकरवाले,
के बोले माँ तुमि अबले!
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम,
रिपुदलवारिणीं मातरम्!
वन्दे मातरम्!
तुमि विद्या, तुमि धर्म,
तुमि हृदि, तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे!
बहुते तुमि माँ शक्ति,
हृदये तुमि माँ भक्ति,
तोमारै प्रतिमा गढ़ि मन्दिरे–मन्दिरे।
वन्दे मातरम्!
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी,
कमला कमलदलविहारिणी,
वाणी विद्यादायिनी,
नमामि त्वां नमामि कमलाम्,
अमलाम् अतुलाम,
सुजलां सुफलां मातरम्!
वंदे मातरम् ।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्,
धरणीं भरणीं मातरम्!
वन्दे मातरम्!

स्रोत: Ministry of Home Affairs, Government of India. Orders Relating to the National Song of India, 2026.

वंदे मातरम्' केवल एक गीत नहीं है, बल्कि भारतीय राष्ट्र–चेतना के क्रमिक विकास का साक्षी है। यह रचना एक शाश्वत राष्ट्रगीत के रूप में स्वतंत्रता संग्राम के दौर में अनगिनत स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्र–निर्माताओं के लिए प्रेरणास्रोत बनी और धीरे–धीरे भारत की राष्ट्रीय पहचान तथा सामूहिक चेतना का स्थायी प्रतीक बन गई। इस गीत की रचना बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा की गई थी और इसका प्रथम प्रकाशन 7 नवम्बर 1875 को साहित्यिक पत्रिका 'बंगदर्शन' में हुआ, बाद में उन्होंने इसे अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'आनंदमठ' में सम्मिलित किया, जो 1882 में प्रकाशित हुआ।[1] प्रारंभिक काल में 'वंदे मातरम्' एक भावनात्मक साहित्यिक रचना के रूप में ही विद्यमान था, जिसकी गूँज मुख्यतः बौद्धिक और साहित्यिक मंडलियों तक सीमित थी। इस गीत को व्यापक पहचान तब मिली जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे देश–रागिनी पर स्वरबद्ध किया। इसके पश्चात 1896 में रहीमतुल्ला सयानी की अध्यक्षता में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में 'वंदे मातरम्' के सार्वजनिक गायन ने इसे साहित्य की सीमाओं से बाहर निकालकर राजनीति और सार्वजनिक जीवन के केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया। यहीं से यह गीत भारतीय राष्ट्रवाद की मुखर अभिव्यक्ति बन गया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में, विशेषकर 1905 के बंगाल विभाजन और स्वदेशी आंदोलन के दौरान, 'वंदे मातरम्' जन–आंदोलन की आत्मा के रूप में उभरा। जुलूसों, सभाओं और स्वदेशी अभियानों में यह गीत सामूहिक प्रतिरोध और आत्मगौरव का प्रतीक बनकर गूँजने लगा। हालांकि, इसी दौर में औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा इसके गायन पर कुछ स्थानों पर प्रतिबंध लगाए गए, जिसके कारण इसे आंशिक रूप में गाने की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इस गीत का स्वरूप समय के साथ बदलता भी रहा। उदाहरणस्वरूप, सरला देवी (रवीन्द्रनाथ टैगोर

की भांजी तथा भारत स्त्री महामण्डल की संस्थापक) को जब गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में 1905 में हुए कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में वंदे मातरम् का संक्षिप्त रूप गाने को कहा तो उसे यह स्पष्ट नहीं था, कि उससे किस हिस्से को काटना और गाना अपेक्षित किया गया है, जिसके कारण उन्होंने कुछ अंश को संक्षिप्त करते हुए 'सप्तकोटी' के स्थान पर 'त्रिश कोटि' शब्द का प्रयोग किया जिसके सुनने पर श्रोतागण में गहरा भावनात्मक प्रभाव पड़ा साथ ही विभिन्न प्रांतों से आये देशभक्तों के हृदय आंदोलित हो उठे।[2] यह परिवर्तन दर्शाता है कि 'वंदे मातरम्' एक जड़ रचना नहीं था, बल्कि समकालीन यथार्थ के साथ स्वयं को ढालने वाला जीवंत गीत है। इस गीत की ऐतिहासिक प्रामाणिकता की पुष्टि 16 अप्रैल 1907 को श्री अरविंदो द्वारा अंग्रेज़ी दैनिक 'वंदे मातरम्' में लिखे गए एक लेख से भी होती है।3 उन्होंने उल्लेख किया कि उस समय तक इस गीत की रचना को बत्तीस वर्ष बीत चुके थे। श्री अरविंद के अनुसार, आरंभ में इसे बहुत कम लोगों ने सुना, किंतु जब लंबे भ्रम और निष्क्रियता के बाद जागरण का क्षण आया, तब बंगाल की जनता ने इसे अपनी नियति से जुड़ा हुआ स्वर मानकर अपनाया। समय के साथ 'वंदे मातरम्' की लोकप्रियता बढ़ती गई। 1915 में मद्रास की एक सभा में महात्मा गांधी ने इसे मातृभूमि के प्रति कर्तव्य–बोध और प्रेरणा जगाने वाला राष्ट्रवादी गीत माना, किंतु इसी बढ़ती लोकप्रियता के साथ 1906–07 से ही इसके विरोध और साम्प्रदायिक तनाव के संकेत पुलिस अभिलेखों में दिखाई देने लगे, जो 1930 और 1940 के दशकों में और अधिक तीव्र हो गए। इसी संदर्भ में गांधी ने यह स्पष्ट किया कि 'वंदे मातरम्' कोई धार्मिक आह्वान नहीं, बल्कि विशुद्ध रूप से राजनीतिक और राष्ट्रवादी गीत है, जिसका प्रयोग किसी भी समुदाय को आहत करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।[4] इस प्रकार 1915 से 1947 के बीच 'वंदे मातरम्' एक ओर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आशा, संघर्ष और बलिदान का प्रतीक बना, तो दूसरी ओर उसके इर्द–गिर्द उभरे विवादों के कारण उसने एक जटिल, बहुस्तरीय और अंतर्विरोधी ऐतिहासिक अर्थ भी ग्रहण किया। यही प्रतिस्पर्धी और यही व्यापकता 'वंदे मातरम्' को भारतीय इतिहास और राष्ट्र–चेतना का एक विशिष्ट और विचारोत्तेजक प्रतीक बनाती है।

1896 का वर्ष 'वंदे मातरम्' की यात्रा में एक निर्णायक पड़ाव सिद्ध हुआ। इसी वर्ष कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में यह गीत पहली बार खुले मंच से गाया गया। इस घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि अब 'वंदे मातरम्' केवल पुस्तक के पन्नों तक सीमित नहीं रहा। वह कविता, जिसे अब तक पढ़ा और सराहा जाता था, पहली बार जनता द्वारा सुनी गई, गाई गई और सामूहिक अनुभूति का हिस्सा बनी। यहीं से यह गीत राष्ट्रीय राजनीति और सार्वजनिक जीवन के बीच एक सेतु बन गया। 1905 में बंगाल विभाजन के बाद देशभर में जो असंतोष और क्षोभ फैला, उसे 'वंदे मातरम्' ने स्वर प्रदान किया। जुलूसों और सभाओं में जब यह गीत गूंजता था, तब वह केवल एक गीत नहीं रहता था, बल्कि लोगों को एक साझा उद्देश्य से जोड़ने वाली आवाज़ बन जाता था। इसी काल में यह गीत राष्ट्रवादी चेतना का भावनात्मक केंद्र बन गया। 'वंदे मातरम् संप्रदाय' अक्टूबर 1905 में उत्तर कलकत्ता में 'वन्दे मातरम् संप्रदाय' नामक एक राष्ट्रवादी समूह का गठन हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों में मातृभूमि के प्रति प्रेम, समर्पण और राष्ट्रीय चेतना की भावना को मजबूत करना था। समूह के सदस्य प्रत्येक रविवार को प्रभात फेरी निकालते और सामूहिक रूप से वन्दे मातरम् का गायन करते थे। इन गतिविधियों के माध्यम से वे लोगों को स्वदेशी आंदोलन से जोड़ने तथा राष्ट्रहित के लिए आर्थिक सहयोग जुटाने का प्रयास करते थे। इस प्रकार प्रभात फेरियाँ केवल धार्मिक अथवा सांस्कृतिक आयोजन नहीं थीं, बल्कि उस समय राष्ट्रीय भावना के प्रसार का प्रभावी माध्यम बन गई थीं। इन आयोजनों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी कभी–कभी भागीदारी होती थी, जिससे इनके सांस्कृतिक और राष्ट्रवादी प्रभाव को और बल मिला।

20 मई 1906 को बरिसाल में आयोजित विशाल जुलूस वन्दे मातरम् की व्यापक जन स्वीकृति को दर्शाता है। इसमें 10,000 से अधिक हिंदू और मुसलमान सम्मिलित हुए तथा जुलूस के दौरान "वन्दे मातरम्" और "अल्लाह–हो–अकबर" के नारे लगाए गए। दोनों समुदायों के प्रतिभागियों ने वन्दे मातरम् अंकित झंडे भी हाथों में ले रखे थे, जो उस समय इसके व्यापक राष्ट्रवादी समर्थन को दर्शाता है। (The Bengalee, 23 May 1906, Barisal Procession) अंग्रेजी समाचार पत्र ने वन्दे मातरम् की राष्ट्रवादी लोकप्रियता को व्यापक बनाने में ग्रामोफोन तकनीक का भी योगदान रहा। 1907 में हेमेन्द्र मोहन बोस ने अपने H. ठवेम त्मबवतके के माध्यम से इस गीत की रिकॉर्डिंग बाजार में प्रस्तुत की, जिसे ब्रिटिश पुलिस की कार्रवाई के दौरान नष्ट कर दिया गया; हालांकि इसकी कुछ प्रतियाँ बेल्जियम और पेरिस में सुरक्षित रह गईं, आगे चलकर विष्वभारती के कलाकारों ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा निर्धारित धुन में इसे स्वरबद्ध किया। सुभाषचंद्र बोस के सुझाव पर तिमिर बरन ने गीत को राग दुर्गा में मार्चिंग शैली प्रदान की, जिसका प्रयोग आज़ाद हिंद सेना के कार्यक्रमों में तथा सिंगापुर रेडियो के प्रसारण में किया गया। इस प्रस्तुति में भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्ययंत्रों का मिश्रित प्रयोग किया गया था।[5] इस गीत का इस तरह से उभरना इस बात का संकेत था कि गीत अब संगठित प्रयासों के माध्यम से जनता के बीच जीवित और सक्रिय भूमिका निभा रहा था। स्वदेशी आंदोलन के साथ–साथ 'वंदे मातरम्' की पहुँच भी फैलती गई। आरंभ में सुब्रह्मण्य भारती (1882–1921) तमिल के प्रमुख राष्ट्रवादी कवि, पत्रकार तथा स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े साहित्यकार थे। उनके लेखन में स्वाधीनता, देशप्रेम और राष्ट्रीय एकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उन्होंने बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के वन्दे मातरम् का तमिल रूपांतरण अपने राष्ट्रवादी काव्य–संग्रह स्वदेश गीतांगल में प्रस्तुत किया। इस प्रयास के माध्यम से उन्होंने वन्दे मातरम् की राष्ट्रवादी भावना को तमिल भाषी जनसमुदाय तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके बाद मराठी, तमिल और मलयालम जैसे भाषायी रूपांतरण सामने आए। इन अनुवादों ने यह सिद्ध किया कि गीत की भावना किसी एक भाषा या प्रांत तक सीमित नहीं थी। अलग–अलग भाषाओं में गाए जाने के बावजूद इसका मूल भाव मातृभूमि के प्रति प्रेम और समर्पण रहा। इस प्रक्रिया ने इसे पूरे देश की साझा आवाज़ में बदल दिया। 1906 में 'वंदे मातरम्' का ग्रामोफोन रिकॉर्ड के रूप में सामने आना अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर के स्वर में रिकॉर्ड किया गया यह गीत आधुनिक तकनीक के सहारे उन लोगों तक भी पहुँचा, जो सभाओं और जुलूसों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं हो पाते थे। रिकार्डों पर औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा लगाए गए प्रतिबंध और उन्हें नष्ट किए जाने की घटनाएँ इस बात का संकेत देती हैं कि यह गीत अब केवल भावनाओं तक सीमित नहीं रहा था, बल्कि सत्ता के लिए चुनौती बन चुका था। 1907 में अरविंद घोष ने 'वंदे मातरम्' को देशभक्ति के नए धर्म का मंत्र कहकर संबोधित किया।[6] उनके लिए यह गीत राजनीतिक विरोध से कहीं आगे बढ़कर राष्ट्र के आत्मिक जागरण का प्रतीक था। इसी वर्ष उनके लेखों से यह भी स्पष्ट होता है कि जो गीत कभी सीमित बौद्धिक वर्ग तक जाना जाता था, वह अब जनता की सामूहिक चेतना का हिस्सा बन चुका था। 1915 में मद्रास की एक सभा में महात्मा गांधी ने 'वंदे मातरम्' को एक ऐसे गीत के रूप में देखा, जो लोगों के भीतर मातृभूमि के प्रति कर्तव्य और जिम्मेदारी का बोध कराता है।[7] गांधी के लिए इसका महत्व उग्र भावनाओं में नहीं, बल्कि आत्मसंयम, सेवा

और नैतिक शक्ति में निहित था। इस व्याख्या ने गीत को भावनात्मक आवेग से ऊपर उठाकर नैतिक राष्ट्रवाद के धरातल पर स्थापित कर दिया। 1937 में कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा 'वंदे मातरम्' के पहले भाग को स्वीकार किया जाना इस गीत की राजनीतिक और ऐतिहासिक स्थिति को औपचारिक रूप देता है। इसी वर्ष रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जवाहरलाल नेहरू को लिखे पत्र में यह स्मरण किया कि किस प्रकार उन्होंने बंकिम चंद्र के जीवित रहते इस गीत को स्वरबद्ध किया और कांग्रेस के मंच पर पहली बार गाया था।8 आगे जाकर जुलाई 1947 का समय भारत के लिए एक निर्णायक संक्रमण का दौर था। जहाँ देश एक ओर स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहा था, तो दूसरी ओर नवगठित राष्ट्र के प्रतीकों और सार्वजनिक परंपराओं को लेकर गंभीर विचार–विमर्श चल रहा था। इसी संदर्भ में 31 जुलाई 1947 को मध्य प्रांत एवं बरार से संविधान सभा के सदस्य हरि विष्णु कामथ ने संविधान सभा के समक्ष सुझाव रखा कि आगामी आधिकारिक कार्यक्रमों में "वंदे मातरम्" को भी स्थान दिया जाए।[9] उनके लिए यह केवल किसी देशभक्ति गीत को कार्यक्रम का हिस्सा बनाने का प्रश्न नहीं था, बल्कि उस गीत से जुड़ी उस व्यापक राष्ट्रीय चेतना को सम्मान देने का विषय था, जिसने स्वतंत्रता संघर्ष के लंबे दौर में लोगों की भावनाओं को स्वर दिया था।

स्वतंत्रता की पूर्वसंध्या पर इस भावना को एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी मिली। 14 अगस्त 1947 की ऐतिहासिक रात, सत्ता हस्तांतरण से जुड़े समारोह में सुचेता कृपलानी ने "वंदे मातरम्" के प्रथम पद का गायन किया। इस अवसर पर गीत का स्वर केवल एक औपचारिक प्रस्तुति नहीं था; उसमें बीते संघर्ष की स्मृतियाँ, स्वतंत्रता की आकांक्षा और एक नए राष्ट्र के निर्माण की उम्मीदें एक साथ प्रतिबिंबित होती दिखाई देती हैं। इस प्रकार,"वंदे मातरम्" की यात्रा स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रभावशाली राष्ट्रवादी गीत से आगे बढ़कर स्वतंत्र भारत के जन्म के महत्वपूर्ण क्षणों तक पहुँचती है। स्वतंत्रता की उस ऐतिहासिक रात में इसकी उपस्थिति ने इसे राष्ट्रीय स्मृति और स्वतंत्र भारत की आरंभिक सार्वजनिक परंपरा से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आजादी के बाद संविधान सभा के सदस्य तथा असम के प्रमुख कांग्रेसी नेता रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जब भारत में हमारा राजनीतिक आंदोलन शुरू हुआ, तब उसके शुरुआती दौर में "वंदे मातरम्" का गायन एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन चुका था। आखिर "वंदे मातरम्" का अर्थ क्या है? यह केवल मातृभूमि की स्तुति नहीं, बल्कि एक देवी के आह्वान और उसके प्रति आस्था की अभिव्यक्ति भी है। इसलिए यदि हमारी चर्चा में ईश्वर का नाम लिया जा रहा है, तो देवी की उपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए। हम, जो शक्ति–परंपरा में विश्वास रखते हैं, केवल ईश्वर के नाम का उल्लेख करके देवी को पूरी तरह अलग कर देने को उचित नहीं मानते। मेरा आग्रह बस इतना है कि यदि इस प्रसंग में धार्मिक प्रतीक का उल्लेख किया ही जा रहा है, तो उसमें देवी और शक्ति के स्वरूप को भी समान रूप से स्थान मिलना चाहिए।[10] हालांकि मेरा मानना है कि मूल रूप से ऐसा संशोधन लाने की आवश्यकता ही नहीं थी; लेकिन चूँकि इसे सभा के सामने प्रस्तुत किया जा चुका है, इसलिए मैं इस विषय पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूँ। यह स्मृति गीत की ऐतिहासिक निरंतरता को रेखांकित करती है। 24 जनवरी 1950 को संविधान सभा के अंतिम सत्र में डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा की गई घोषणा ने 'वंदे मातरम्' को स्वतंत्र भारत की औपचारिक स्मृति में स्थायी स्थान प्रदान किया।[11] हालाँकि 'जन–गण–मन' को राष्ट्रगान घोषित किया गया, फिर भी 'वंदे मातरम्' को समान सम्मान दिया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र भारत ने इस गीत को केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चेतना की जीवित विरासत के रूप में स्वीकार किया।

बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में 'वंदे मातरम्' का सवाल धीरे–धीरे केवल एक देशभक्ति गीत की सीमा से आगे जाकर भारतीय समाज के भीतर उभर रहे सांप्रदायिक तनावों का एक संवेदनशील संकेतक बन गया। जिस रचना को आरंभ में राष्ट्रवादी चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया था, वही समय के साथ अनेक मुसलमानों के लिए मानसिक असहजता, धार्मिक आपत्ति और सामाजिक दबाव का कारण बनती चली गई। यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ, बल्कि ऐतिहासिक परिस्थितियों और सामाजिक अनुभवों के क्रमिक विकास का परिणाम था। जिसे सच्चे अर्थों में गीत का राजनीतिकरण कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया की शुरुआत 1906 में बरिसाल स्वदेशी आंदोलन के दौरान वन्दे मातरम् के सार्वजनिक इस्तेमाल का प्रमुख केंद्र बन गया। राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं ने जुलूसों तथा जनसभाओं में इसे राष्ट्रीय भावना के उद्घोष के रूप में अपनाया, वहीं इसके सार्वजनिक उच्चारण को लेकर कुछ मुस्लिम समूहों की आपत्तियाँ भी सामने आईं। इस प्रकार बरिसाल में वन्दे मातरम् ने एक ओर स्वदेशी चेतना और जनभागीदारी को संगठित करने में भूमिका निभाई, तो दूसरी ओर इसके प्रयोग ने उस समय उभर रहे सामुदायिक तनावों को भी सामने लाया।।[12] तत्कालीन प्रशासनिक अभिलेखों में यह दर्ज किया गया कि लगातार बढ़ते दबावों के कारण मुसलमानों के व्यवहार और प्रतिक्रिया में परिवर्तन देखा जा रहा है। ग्रामीण इलाकों में बहिष्कार की प्रवृत्ति उभरने लगी, जो मुख्यतः स्वदेशी आंदोलन के अंतर्गत विदेशी वस्तुओं विशेषकर मैनचेस्टर के कपड़ों के त्याग से जुड़ी हुई थी। 1907 तक सरकारी रिपोर्टों में यह भी उल्लेख मिलने लगता है कि इन आंदोलनों में मुसलमानों की भागीदारी सीमित होती जा रही है और कांग्रेस की बैठकों से उनकी दूरी बढ़ रही है, जिससे मैमनसिंह ज़िले सहित आस–पास के क्षेत्रों में साम्प्रदायिक तनाव और अस्थिरता को और बल मिला। इसी कालखंड में बंगाल में लाल रंग के काग़ज़ पर मुद्रित एक अनाम पर्चा मुसलमानों के बीच फैलाया गया, जिसमें उनसे हिंदुओं के स्वदेशी आंदोलन से अलग रहने और 'वंदे मातरम्' का उच्चारण न करने की अपील की गई थी।[13] इस पर्चे ने इतना व्यापक ध्यान आकर्षित किया कि अंग्रेज़ी समाचार–पत्रों में इसकी चर्चा हुई और ब्रिटिश संसद में भी यह प्रश्न उठा कि क्या प्रारंभिक सांप्रदायिक गड़बड़ियों के पीछे यही पर्चा प्रमुख कारण था। इन घटनाओं के साथ 'वंदे मातरम्' की छवि केवल एक राजनीतिक नारे के रूप में नहीं, बल्कि सांप्रदायिक विभाजन के प्रतीक के रूप में भी उभरने लगी। इस सांप्रदायिक विचार के प्रसार में संकीर्ण मनोदशा के साथ शासन की 'बाँटो और राज करो' की नीति भी महत्वपूर्ण कारक थीं।

1920 के दशक में इस विरोध ने अधिक स्पष्ट धार्मिक और वैचारिक रूप ग्रहण किया। मुज़फ्फर अहमद, भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के प्रमुख प्रारंभिक नेताओं और पत्रकारों में से एक थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा माइसेल्फ एंड द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास आनंदमठ को सांप्रदायिक विद्वेष से युक्त बताते हुए यह मत व्यक्त किया कि 'वंदे मातरम्' किसी ऐसे मुस्लिम युवक के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकता, जिसका पालन–पोषण एकेश्वरवादी धार्मिक परंपरा में हुआ हो। क्योंकि इस गीत में मातृभूमि को देवी दुर्गा के रूप में प्रस्तुत कर उसकी वंदना की गई है।[14] इस्लाम के एकेश्वरवादी सिद्धांत (तौहीद) के अनुसार अल्लाह के अलावा किसी अन्य सत्ता की स्तुति या उपासना स्वीकार्य नहीं मानी जाती। इसी कारण कई मुस्लिम नेताओं का मानना था कि धार्मिक आस्था के चलते वे इस गीत का गायन नहीं कर सकते थे। इसी समय प्रकाशित बंगाली पत्रिका इस्लाम–दर्शन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जब मुसलमानों के सर्वोच्च और एकमात्र कलीमे 'अल्लाह–ओ–अकबर' की तुलना हिंदूओं के मातृभूमि–वंदना गीत से की जाती है, तो

उस पर आपत्ति स्वाभाविक है और यह स्थिति मुस्लिम जनमानस को कुफ़्र (अविष्वास) की दिशा में ढकेलने जैसी प्रतीत होती है।[15] 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में यह विवाद और अधिक गहराता गया तथा औपनिवेशिक शासन के उच्च स्तरों तक पहुँच गया। 1937 में गृह विभाग के तत्कालीन प्रधान सर हेनरी क्राइक ने लॉर्ड बेडेन पावेल को लिखा 'वंदे मातरम्' को मुसलमानों के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने वाले मंत्र के रूप में देखा जा रहा है।[16] उन्होंने आनंदमठ के अंशों का संदर्भ देते हुए यह तर्क दिया कि बंगाल की क्रांतिकारी संस्थाओं ने इस ग्रंथ से वैचारिक प्रेरणा ग्रहण की है और लंबे समय से यह नारा क्रांतिकारी तथा हिंसक गतिविधियों से जुड़े समूहों के लिए युद्धघोष के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। उनके अनुसार, यद्यपि इन शब्दों का शाब्दिक अर्थ 'माता की जय' है, किंतु हिंसक कार्रवाइयों के दौरान इसके प्रयोग ने इसे विवादास्पद बना दिया है। इसके साथ ही विवाद का केंद्र प्रांतीय विधानसभाओं और शैक्षणिक संस्थानों की ओर स्थानांतरित हो गया। अनेक मुसलमान विधायकों ने विधानसभाओं में इसके गायन का विरोध किया और 1939 के आरंभ में बिहार के गवर्नर ने भी वायसराय को इसी आशय की रिपोर्ट भेजी। इसी समय पटना में आयोजित मुस्लिम लीग के अधिवेशन में 'वंदे मातरम्' के विरुद्ध तीखे वक्तव्य दिए गए। कई लोगों को इस गीत की भाषा, प्रतीकात्मकता और अलंकार इसलिए अस्वीकार्य लगे क्योंकि उन्हें इसकी भावभूमि मूर्तिपूजा से जुड़ी हुई प्रतीत होती थी और उसका स्वर धर्मनिरपेक्षता के अनुकूल नहीं लगता था। विद्यालयों में 'वंदे मातरम्' के गायन को लेकर उत्पन्न विवाद ने स्थिति को और जटिल बना दिया। मुस्लिम लीग ने इसकी जांच के लिए पीरपुर समिति का गठन किया।[17] इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि कांग्रेस शासित क्षेत्रों के कुछ विद्यालयों में मुस्लिम छात्रों को 'वंदे मातरम्' के गायन में भाग लेने के लिए दबाव डाला जाता था, जिससे उनकी धार्मिक भावनाएँ आहत होती थीं। इसलिए समिति ने इस प्रकार की बाध्यता पर आपत्ति व्यक्त की। यह स्वीकार किया कि अनेक स्थानों पर मुस्लिम बच्चों को इस गीत के गायन में बाध्य किया जा रहा है। यद्यपि कांग्रेस सरकारों का यह दावा था कि ऐसे निर्देश बाध्यकारी नहीं हैं, फिर भी मुस्लिम समाज में यह धारणा प्रबल होती गई कि उन पर सांस्कृतिक दबाव थोपा जा रहा है।

1939 में बिहार के गया सहित कुछ क्षेत्रों में हुए फसादों के संदर्भ में भी इस मुद्दे को तनाव के प्रमुख कारणों में गिना गया और कांग्रेस तथा लीग ने एक–दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप लगाए। जब 'वंदे मातरम्' को लेकर विवाद अधिक गहरा गया, तब जवाहरलाल नेहरू ने इस विषय पर जल्दबाजी में कोई निष्कर्ष निकालने के बजाय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की सलाह लेना अधिक उचित समझा। उनका मानना था कि आनंदमठ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा उसमें निहित धार्मिक प्रतीकों के कारण मुस्लिम समुदाय के एक हिस्से में इस गीत के प्रति असहमति की भावना उत्पन्न हो सकती है। इसलिए इस प्रश्न का समाधान केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। टैगोर ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि 'वंदे मातरम्' के प्रथम दो अंतरे मातृभूमि के प्रति प्रेम, सम्मान और राष्ट्रीय समर्पण की भावना को अभिव्यक्त करते हैं, इसलिए उन्हें व्यापक रूप से स्वीकार किया जा सकता है। वहीं, बाद के अंतरों में देवी–आराधना से संबंधित भाव प्रमुख हैं, जिन्हें सभी धार्मिक समुदाय समान रूप से स्वीकार करने में सहज महसूस नहीं कर सकते।[18] इसी कारण उन्होंने सुझाव दिया कि राष्ट्रीय गीत के रूप में केवल पहले दो अंतरों "सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम३" और "शुभ्रज्योत्स्ना पुलकित यामिनीम३" को ही मान्यता दी जाए। उन्होंने यह भी स्मरण कराया कि 1896 के कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने स्वयं इस गीत का गायन किया था और 1905 के बंग–भंग आंदोलन के दौरान यह गीत भारतीय राष्ट्रवादी चेतना तथा जन–जागरण का एक सशक्त प्रतीक बनकर उभरा था। 1938 में आयोजित लीग के कराची अधिवेशन में कांग्रेस पर यह आरोप लगाया गया कि वह मुसलमानों और अन्य गैर–हिंदू समुदायों पर 'वंदे मातरम्' को राष्ट्रगान के रूप में थोपना चाहती है। जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इसे कांग्रेस की आक्रामक नीति का उदाहरण बताते हुए कहा कि यह गीत न केवल मूर्तिपूजक प्रकृति का है, बल्कि अपने मूल विचार में मुसलमानों के प्रति घृणा फैलाने वाला है।[19] ओडिशा, बिहार और अन्य प्रांतों में मुस्लिम लीग द्वारा वितरित पर्चों तथा गवर्नरों की रिपोर्टों में भी इसी प्रकार की आशंकाएँ व्यक्त की गईं।

1940 के दशक तक यह स्थिति इतनी स्पष्ट हो चुकी थी कि स्वयं महात्मा गांधी ने भी यह स्वीकार किया कि 'वंदे मातरम्' को अब सांप्रदायिक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा है। स्वतंत्रता के बाद भी यह विवाद समाप्त नहीं हुआ और 25 अप्रैल 1998 को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'कल्प योजना' के अंतर्गत एक प्रशासनिक आदेश जारी किया गया। इस आदेश में सरकारी विद्यालयों के संचालन से संबंधित कुछ दिशानिर्देश निर्धारित किए गए थे, जिनका उद्देश्य विद्यालयी गतिविधियों में एकरूपता सुनिश्चित करना बताया गया। आदेश के प्रावधानों में यह उल्लेख था कि सरकारी विद्यालयों में प्रतिदिन 'वंदे मातरम्' का सामूहिक गायन किया जाए। आदेश के जारी होने के पश्चात विभिन्न सामाजिक और धार्मिक समूहों की ओर से इस पर अलग–अलग प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। कुछ स्थानों पर असहमति और विरोध की अभिव्यक्तियाँ भी दर्ज की गईं। इसी संदर्भ में यह सूचनाएँ प्रकाशित हुईं कि कुछ मुस्लिम अभिभावकों ने अपने बच्चों का नाम सरकारी विद्यालयों से हटाने का निर्णय लिया। साथ ही, मीडिया रिपोर्टों में यह भी उल्लेख किया गया कि इस विषय पर मुस्लिम लॉ बोर्ड की ओर से कुछ अपीलें या वक्तव्य दिए गए थे।[20] इस घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि 'वंदे मातरम्' से जुड़ा विवाद केवल अतीत की ऐतिहासिक स्मृति नहीं है, बल्कि आधुनिक भारत में भी धर्मनिरपेक्षता, सांस्कृतिक प्रतीकों और अल्पसंख्यक अधिकारों से जुड़ी एक जीवंत और जटिल बहस के रूप में बना हुआ है।

भारत में वर्षो से वंदे मातरम् को राष्ट्रीय गीत के रूप में विशेष सम्मान प्राप्त है। 24 जनवरी 1950 को संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने घोषणा की थी कि इसे जन गण मन के समान सम्मान एवं समान दर्जा दिया जाएगा। हालांकि, 23 दिसंबर 1971 को बने Prevention of Insults to National Honour Act, 1971 की धारा 3 में उस समय केवल राष्ट्रगान के गायन को रोकने अथवा उसमें व्यवधान डालने को दंडनीय बनाया गया था; वंदे मातरम् को इसमें शामिल नहीं किया गया था।[21] फिर 2026 में इस स्थिति में बदलाव करते हुए Prevention of Insults to National Honour Bill, 2026 को 24 जुलाई 2026 को राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया। यह 29 जुलाई को राज्यसभा और 30 जुलाई को लोकसभा से पारित हुआ तथा 6 अगस्त 2026 को महामहिम राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने इसे स्वीकृति प्रदान की। इसके बाद यह Prevention of Insults to National Honour (Amendment) Act, 2026 बना और वंदे मातरम् को भी धारा 3 के अंतर्गत वैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ। अब इसके गायन को जानबूझकर रोकना या वंदे मातरम् गाने वाली सभा में व्यवधान डालना दंडनीय है, जिसके लिए अधिकतम तीन वर्ष का कारावास, जुर्माना अथवा दोनों का प्रावधान है। वर्तमान में आधिकारिक तौर पर पूर्ण संस्करण में छह पद शामिल हैं, जिसकी अवधि लगभग 3 मिनट 10 सेकंड है। यदि किसी समारोह में वंदे मातरम् और जन गण मन दोनों प्रस्तुत किए जाते हैं, तो पहले वंदे मातरम् तथा उसके बाद जन गण मन प्रस्तुत

किया जाएगा । राष्ट्रीय ध्वज फहराने, सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा औपचारिक समारोहों में, परेड को छोड़कर, वंदे मातरम् के सामूहिक गायन का प्रावधान है। इसी प्रकार, राष्ट्रपति के किसी सरकारी अथवा सार्वजनिक समारोह में आगमन तथा प्रस्थान के अवसर पर भी इसका सामूहिक गायन किया जाने का प्रावधान है। विद्यालयों में दिन के कार्य की शुरुआत वंदे मातरम् के सामूहिक गायन से की जा सकती है।[22] इस प्रकार, वर्तमान व्यवस्था वंदे मातरम् को राष्ट्रीय सम्मान के महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उसके गायन के अवसरों और संबंधित प्रोटोकॉल को भी स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि औपनिवेशिक भारत में 'वंदे मातरम्' केवल एक संगीति रचना नहीं था, बल्कि वह औपनिवेशिक अधीनता के विरुद्ध उभरती राष्ट्रीय चेतना, आत्मगौरव और सांस्कृतिक आत्मविष्वास का सशक्त प्रतीक बन चुका था। स्वतंत्रता संघर्ष के दौर में इस गीत ने व्यापक जनसमुदाय को भावनात्मक रूप से जोड़ा और राष्ट्रीय एकता की भावना को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि इसके प्रतीकात्मक अर्थों, साहित्यिक संदर्भों और धार्मिक बिंबों को लेकर कुछ वर्गों में असहमति और आपत्तियाँ भी प्रकट हुईं, फिर भी यह विरोध उस व्यापक राष्ट्रवादी चेतना को नकार नहीं सका, जिसे 'वंदे मातरम्' ने औपनिवेशिक काल में स्वर प्रदान किया। समर्थन और विरोध दोनों ही प्रतिक्रियाएँ समय, परिस्थितियों और सामाजिक संरचनाओं से प्रभावित थीं तथा इन्हें किसी एक समुदाय या विचारधारा तक सीमित नहीं किया जा सकता। समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय प्रतीकों को उनके ऐतिहासिक संघर्ष, बलिदान और साझा स्मृतियों के आलोक में समझा जाना चाहिए। वर्तमान समय में जब राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक निरंतरता और ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है, तब 'वंदे मातरम्' को एक ऐसे राष्ट्रवादी प्रतीक के रूप में देखना अधिक समीचीन प्रतीत होता है जो औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध और आत्मसम्मान की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। अतः 'वंदे मातरम्' के समर्थन और विरोध का यह ऐतिहासिक अध्ययन इस निष्कर्ष की ओर संकेत करता है कि यह गीत भारतीय राष्ट्रवाद की विकसित होती चेतना का अभिन्न अंग रहा है, जिसे समावेशी दृष्टि, ऐतिहासिक संदर्भ और राष्ट्रीय एकात्मता के व्यापक लक्ष्य के साथ संतुलित रूप में समझना आवश्यक है। वर्तमान के प्रावधानों ने वंदे मातरम् की उस भावनात्मक और राष्ट्रीय विरासत को एक नया विधिक आधार दिया है, जिसे भारत ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौर से संजोकर रखा है। आज यह केवल एक गीत नहीं, बल्कि उन भावनाओं की अभिव्यक्ति है, जिन्होंने कभी देशवासियों को एक साथ खड़ा किया था। इसके सम्मान, गायन और प्रस्तुति से जुड़े स्पष्ट प्रावधान यह बताते हैं कि समय बदलने के बावजूद "वंदे मातरम्" के प्रति राष्ट्र की भावनात्मक निष्ठा और उसका राष्ट्रीय महत्व आज भी जीवंत है।

संदर्भ सूची

1. Press Information Bureau. (2025, November 6). 150 years of Vande Mataram: A melody that became a movement. Government of India.
2. चौधराणी, सरला देवी. (1957). जीवनेर झरापाता (अध्याय 7, पृ. 44–48).
3. भट्टाचार्य, एस. (2025). वंदे मातरम्: एक गीत की जीवनी. अनुवाद: चंदन श्रीवास्तव. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 77
4. 23 अगस्त 1947 को प्रार्थना सभा में महात्मा गांधी का भाषण–सी. डब्ल्यू. एम. जी., भाग–69, पृ. 80
5. चांदवणकर, एस. (19 फरवरी, 2003)। वन्दे मातरम् (लेख संख्या MT120)। म्यूजिकल ट्रेडिशन्स। सुरेश चांदवणकर, मानद सचिव, सोसाइटी ऑफ इंडियन रिकॉर्ड कलेक्टर्स।
6. भट्टाचार्य, वंदे मातरम्: एक गीत की जीवनी, पृ. 57
7. पूर्वोक्त पृ 17
8. रवीन्द्रनाथ टैगोर, 26 अक्टूबर 1937 का जवाहरलाल नेहरू को पत्र, 2 नवम्बर 1937 को अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित यह पत्र प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की 'रवी जीवनी' में पुनर्प्रस्तुत भाग–4, पृ. 110–111.
9. Constituent Assembly Secretariat. (1947, July 31). Constituent Assembly debates: Official report (Vol. 4, No. 14). Government of India.
10. Constituent Assembly Secretariat. (1947, July 31). Constituent Assembly debates: Official report (Vol. 4, No. 14). Government of India.
11. भट्टाचार्य, वंदे मातरम्: एक गीत की जीवनी, पृ. 55–56
12. Islam, S. (2006, September 11). The history and politics of Vande Mataram. The Milli Gazette Online
13. बागची, के. पी.(1955) मैमन सिंह के दंगों पर अरुण मुखर्जी, क्राइम एंड पब्लिक डिसॉर्डर इन कोलोनियल बंगाल 1861–1912 पृ. 118
14. अहमद, मुजफ्फर। (1970). माइसेल्फ एंड द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, 1920दृ1929. कलकत्ता: नेशनल बुक एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड। पृ. 281
15. अब्दुल वदूद बी.ए. 'हरम एंड कुफ्र'– इस्लाम दर्शन, भाग–1, पृ. 244
16. भट्टाचार्य, वंदे मातरम्रू एक गीत की जीवनी, पृ. 25
17. पूर्वोक्त पृ.54
18. पूर्वोक्त पृ.46
19. पूर्वोक्त पृ.27
20. पूर्वोक्त पृ.18
21. Government of India, Ministry of Law and Justice. The Prevention of Insults to National Honour Act, 1971, Act No. 69 of 1971. India Code.
22. Ministry of Home Affairs, Government of India. Orders Relating to the National Song and the National Anthem. New Delhi: Government of India, 2026.